सोलहवाँ अध्याय
भक्तजनों के साथ लीला-विनोद

नानासाहब डेंगले एक विद्वान ज्योतिष थे। एक बार श्रीमान् बापूसाहब बूटी की जन्मपत्री का अवलोकन करते हूए उन्होंने कहा-''बूटीसाहब, आज का दिन आपके लिए घातक है। आज आपका जीवन संकट में है।'' ज्योतिषी की यह अनिष्टसूचक भविष्यवाणी सुनते ही बापूसाहब उदास हो गए। किसी बात में भी उनका मन नही लगा। श्री साई महाराज ने यह भाँप लिया और उन्होंने बूटी से कहा-''बापू, यह नाना क्या व्यर्थ की बकवास कर रहा है ? क्या आज तुम्हारी मृत्यू है? कुछ चिन्ता न करो। मैं देखूँगा, आज तुम्हे उठाने यमदूत कैसे आते है? जाओ, स्वस्थ चित्त से बैठो।''

श्री बाबा के इस आश्वासन से बापूसाहब को धैर्य बंध गया। वे ज्यातिषी की भविष्यवाणी सर्वथा भूल गये। उनका सारा दिन आनन्द से व्यतीत हुआ। संध्या के समय जब बूटीसाहब शौच के लिए गए तो अकस्मात वहाँ एक विकराल विषधर सर्प निकल आया। उनके सेवक लहानू ने, जो पास ही खडा था, सर्प को मारने के लिए एक बडा पत्थर उठाया; पर बापूसाहब ने उस सर्प को डंडे से मारने का आदेश दिया। उस घबराहट में सर्प फूत्कार करता हुआ कही अदृश्य हो गया। ज्योतषी के कथानुसार सचमुच ही वह दिन बापूसाहब के लिए घातक ही सिद्ध होने वाला था। परन्तु श्री बाबा की कृपा से सर्प के रूप में आये हुए यमदूत को उल्टे पाँव लौटना पडा।

अपने किसी भी भक्त को संकट में पडा हुआ देखकर श्री साई महाराज किसी भी विचित्र ढंग उसकी रक्षा करते थे। ऐसी ही एक और घटना है। अमीर शक्कर नामक एक कसाई सन्धि-वात से पीडित था। अपना काम-धंधा छोडकर वह शिरडी में श्री साई महाराज की सेवा में आकर रहने लगा। श्री बाबा ने उसे चावडी के निकट रहने की आज्ञा दे दी। वह स्थान बहुत

संकुचित था और विशेष हवादार भी न था, इसलिए उस कसाई का रोग उत्तरोत्तर भयानक रूप धारण करने लगा। फिर भी श्री बाबा में पूर्ण विश्वास रखते हूए वह वही पडा रहा। अमीर ने वही जैसे-तैसे लगभग नौ महिने काट दिए। यद्यपि श्री बाबा का दर्शन तथा सहवास उसे नित्य प्राप्त होता था, फिर भी अमीर वहाँ रहते-रहते अन्त में तंग आ गया और एक रात को चुपके से निकलकर कोपरगांव की धर्मशाला मे जा पहूँचा। वहाँ एक वृद्ध फकीर से उसकी भेंट हुई। फकीर प्यास से व्याकुल था। अमीर ने फकीर को जल दिया और उसी क्षण फकीर के प्राण पखेरू उड गये। अब तो अमीर बहुत घबडाया। उसने सोचा, 'फकीर की आकस्मिक मृत्यू के लिए पुलिस कही मुझे ही उत्तरदायी न ठहराए और पकड ले।' उसे अब श्री बाबा की आज्ञा का उल्लंघन करने का पश्चाताप हुआ। वह अनन्य भाव से श्री बाबा की प्रार्थना करते हुए पुन: रातों -रात शिरडी लौट आया। शिरडी आकर वह चावडी में वही जाकर सो गया,जहाँ पहले पडा रहता था। मार्ग में वह श्री बाबा के नाम का जप करता रहा था। कोपरगांव की धर्मशाला में आकस्मिक मृत्यू को प्राप्त होने वाले फकीर की घटना का उस पर किसी प्रकार का भी दोषारोपण न हुआ। उसका संधि-वात रोग भी उन्ही दिनों जैसे अपने आप ही नष्ट हो गया। अमीर श्री साई की आज्ञानुसार आनन्द से समय व्यतीत करने लगा।

कुछ समय बाद एक दिन श्री बाबा सोते-सोते जाग उठे और जोर-जोर से चिल्लाकर बोले-''अरे अब्दुल, कोई भयानक प्राणी मेरे बिस्तर की ओर सरपट दौडा आ रहा है।'' अब्दुल ने दीप जलाकर एक-एक कोना छान मारा; पर उसे कही कुछ दिखाई नही दिया। इधर श्री बाबा डंडे से भूमि पर जोर-जोर से प्रहार करते हुए बराबर कह रहे थे-''भली-भाँति सारी जगह की तलाशी लो।'' इस हो-हल्ले में अमीर की भी नींद टूट गई और वह भी इधर-उधर देखने लगा। किसी को कुछ भी दिखाई न दिया। अन्त में श्री बाबा ने ही

अमीर की चटाई की ओर अँगुली उठाई। सब लोगों का ध्यान उस स्थान की ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने देखा की चटाई के नीचे तकिए के निकट एक पीला विशालकाय सर्प डसने की तैयारी में फन उठाए तीव्रता से इधर-उधर डोल रहा था। अब्दुल ने बडी चतुराई से उसका वध कर दिया। श्री बाबा ने अमीर को सावधान कर सर्प-दंश से उसकी रक्षा की। निद्रावस्था में भी श्री साई महाराज अपने भक्तों का कितना अधिक ध्यान रखते थे, यह इस घटना से पाठकों को भली-भाँति विदित हो जायेगा।

सर्प को मार डाला गया है, यह सुनकर श्री बाबा किंचित दु:खी हो गए थे; क्योंकि उनका सदैव यही निश्चित मत रहता था कि विषैले जीवों को कभी भी नही मारना चाहिये। सर्प, नाग, वृश्चिक आदि प्राणि केवल श्री बाबा का नाम-स्मरण करते ही मस्तक झुकाकर चुपचाप चले जाते थे। यह अनेक भक्तों ने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव भी किया था।

एक बार श्री बाबा के मुक्ताराम नामक भक्त का इस विषय पर श्री हेमाडपन्त से कुछ वाद-विवाद हो गया था। श्री हेमाडपन्त का कहना था कि 'ऐसे विषैले प्राणियों पर दया करना संकट का कारण हो सकता है। उन्हें तो जहाँ मिले, वही समाप्त करना अच्छा है।' अन्त में यह बात बढते-बढते श्री बाबा तक पहूँच गई। श्री बाबा ने न्यायाधीश की भाँति दोनों की युक्तियाँ सुनने के पश्चात यह निर्णय दिया -'' परमेश्वर का अस्तित्त्व हरेक प्राणी में अंश रूप से रहता ही है। अखिल विश्व का नियंत्रण करनेवाला परमेश्वर है। सर्प, वृश्चिक, व्याघ्र, सिंह आदि हिंसक प्राणी भी उसकी आज्ञानुसार ही आचरण करते है। परमेश्वर की इच्छा बिना कोई भी प्राणी दूसरे प्राणी पर आघात नही करेगा। इसीलिए हमे भी उन जीवों का वध करने का कोई अधिकार नही।अत्यन्त विषैला सर्प या नाग अकारण किसी व्यक्ति को नही डसता। यदि आप उससे छेड-छाड करेंगे या आपको काटने की उसे परमेश्वर से आज्ञा मिली होगी तो ही वह आपको डस लेगा। जहाँ तक संभव हो, हमारा

कर्तव्य यही होना चाहिए कि हम प्राणी -मात्र के प्रति दया दिखाएँ और उनके साथ प्रेम से बर्ताव करें।''

श्री साई महाराज के इस निर्णय से सभी लोग संतुष्ट हुए। श्री साई एक अवतारी संत थे। उनके हाथों से कभी भी किसी प्राणी की हत्या नही हुई। भक्तों की परीक्षा लेने के उद्देश्य से वे कभी-कभी तामसी वृत्ति से आचरण करने का प्रयत्न करते थे। एक बार एक बहुत ही दुर्बल बकरा द्वारकामाई में आया। उसे देखते ही दाहिनी ओर सम्मान के साथ बैठे हुए मुहम्मद से श्री बाबा ने कहा-''बडे बाबा, इस बकरे को काट डालो।''

श्री साई महाराज मुहम्मद को बहुत सम्मान देते थे। उस अपने दाहिनी ओर बैठाते थे। वह जो चिलम सुलगाक कर देता था, उसे श्री बाबा बडी प्रसन्नता से पीते थे। जब वह बाहर जाने के लिए निकलता था तो स्वयं ही श्री बाबा पचास कदम तक उसके साथ जाते थे। सब लोग मुहम्मद को 'बडे बाबा' कहा करते थे। श्री साईनाथ नित्यनियमानुसार अपनी दक्षिणा के रूपयों में से पचास रूपये उसे भी दे दिया करते थे। इस प्रकार यह व्यक्ति श्री बाबा के दरबार में बडा सम्मानित था। परंतु इन्ही बडे बाबा ने श्री साई बाबा से साफ-साफ कह दिया कि मैं इस गरीब जानवर की अकारण हत्या नही कर सकता। 'श्री बाबा ने तब शामा को आज्ञा दी। शामा ने राधाकृष्णमाई के घर से कटार लाकर श्री बाबा के सामने रखी। इतने में ही राधाकृष्णमाई भागते हुई आई और कटार लेकर चलती बनी। दुसरी कटान लाने के बहाने शामा घर गया और वही बैठ रहा। कुछ देर राह देखने के पश्चात श्री बाबा ने काकासाहब दीक्षित को बकरे की हत्या करने की आज्ञा दी। काकासाहेब ने अपना हृदय कठोर किया और वे साठे की हवेली में से एक बडा भार गँडासा लाकर बकरे का वध करने को तत्पर हो गये। काकासाहेब का पवित्र ब्राम्हण-कुल में जन्म हुआ था। आचरण से वे कर्मठ सनातनी ब्राम्हण थे। सारे जीवना-काल में पशु-बलि जैसा कोई भी घोर पाप उनके हाथों से नही हुआ था। बडे

श्री साईबाबा 'लेंडीबाग' से लौटते हुए, भक्त लोग दर्शनों के लिए खडे हैं ।

बाबा जैसे मुसलमान को भी जो कार्य करने में संकोच अनुभव हुआ, वही कृत्य करने के लिए काकासाहेब उद्यत हुए। बकरे की गर्दन का ठीक-ठीक निशाना बना कर उन्होंने अपना गँडासेवाला हाथ ऊपर उठाया और जैसे ही वे जोर से आघात करने वाले थे कि श्री बाबा ने चिल्लाकर कहा-''ठहरो! हाथ नीचे रखो। कितने दुष्ट हो तुम! ब्राम्हण होकर भी ऐसा कृत्य करते हो?''

काकासाहेब नम्रतापूर्वक गँडासा नीचे रखते हुए बोले, ''बाबा! आपका एक-एक शब्द मेरे लिए वेद-वाक्य की भाँति श्रद्धा की वस्तु है। किसी भी अच्छे-बुरे परिणाम का विचार न करते हुए, केवल आपकी आज्ञा शिरोधार्थ करना मेरा परम कर्तव्य है। हम आपका स्मरण-ध्यान करते है और आपको प्रत्यक्ष परमेश्वर के सदृश समझते है। सारासार का विचार करना हमने छोड दिया है। आपके बताये हुए मार्ग पर चलने से हमारे हाथों से कोई पाप-कर्म नही होगा, यह हमारा दृढ विश्वास है। गुरू की किसी भी आज्ञा का शब्दश: पालन करना, यही हमारा कर्तव्य है और यही हमारा धर्म है।''

काकासाहेब का यह मार्मिक उत्तर सुन कर श्री साई महाराज बडे प्रसन्न हुए। प्रसन्नवदन उनकी ओर देखकर,''मैं ही अब इसकी व्यवस्था करता हूँ'' कहते हुए श्री बाबा ने निकट खडे एक सेवक को यह आज्ञा दी कि बकरे को फकीरों के अड्डे पर पहूँचा दो। वह मूक प्राणी दीन वदन से चल पडा। परंतु मार्ग में आर्त स्वर से चिल्लाते हुए उसने प्राण त्याग दिये। श्री बाबा ने ऐसे विलक्षण ढंग से भक्तों की परीक्षा ली। श्री साई जैसे गुरू की आज्ञा को ही प्रमाण मानते हुए जो भक्त एक क्षण का भी विलंब न कर, उसे प्रत्यक्ष आचरण में लाने का प्रयत्न करता है, वही प्रथम श्रेणी का भक्त कहलाने का अधिकारी होता है।

शिरडी में हर रविवार को बाजार (पेंठ) लगता है। दूर-दूर के गाँवो से देहाती लोग शिरडी आते है और उस बाजार से एक सप्ताह के लिए आवश्यक जीवनोपयोगी वस्तुएँ खरीद ले जाते है। ऐसे ही एक रविवार को जब भक्त

लोग श्री बाबा के पास बैठे थे तो अचानक श्री अण्णासाहेब दाभोलकर के कोट की बाँहो में से भुने हुए चने बाहर निकल कर गिरे। श्री अण्णासाहेब बाजार नही गये थे और न ही उन्होंने चने खरीदे थे। भक्त लोगों को बडा आश्चर्य हुआ की एकाएक चने कहाँ से आये। तब श्री बाबा ने जानबूझ कर विनोद करते हुए कहा-''यह अण्णा तो बडा चालाक है। अकेले ही बाजार जाता है और चने खाता है। मैं इसकी इस आदत से परिचित हूँ। नही तो इसके पास ये चने कहाँ से आये?''

श्री बाबा के परिहास पर विस्मय प्रकट करते हुए अण्णासाहेब ने कहा-''बाबा, में प्रात:काल से अब तक कहीं भी नही गया। शिरडी का बाजार तो मैने आज तक नही देखा। और फिर कोई भी वस्तु चुपके से खरीद कर अकेले ही खाने की तो मेरी आदत ही नही है। मुझ पर यह वृथा आरोप क्यों?''

श्री बाबा ने तुरंत प्रत्युत्तर दिया-''तू दूसरे को देता है, यह मुझे पता है। परंतु जब तेरे पास कोई उपस्थित नही होता, तब क्या करता है? कोई भी वस्तु खाने से पहिले तुझे मेरा स्मरण होता है? मै प्रत्यक्ष भक्तों के निकट रहता हूँ। क्या तू मुझे नैवेद्य देता है?''

श्री साई की इस चने की लीला में गहन अर्थ भरा हुआ दिखाई देगा। चने प्रकट कर मानो श्री बाबा ने अपने भक्तों को एक छोटा-सा पाठ सिखाया। शारीरिक या मानसिक, किसी भी सुख का उपभोग करते हुए भक्त का मन इतना विरक्त होना चाहिये कि प्रतिक्षण उसे अपने गुरूका स्मरण रहे। किसी देवता को भोग (नैवेद्य) चढाते समय हम उस वस्तु का मोह या उसकी अभिलाषा छोड देते है और इस तरह पहले गुरू-चरणों में वस्तु अर्पण करने के बाद ही स्वयं उस ग्रहण करते है। त्याग की यह कल्पना,''तेन त्यक्तेन भुज्जीथा'' यह श्रुति-वचन भक्तों के मन में भली-भाँति दृढ करने के उद्देश य से ही श्री बाबा ने चने की लीला दिखाई थी।

भक्तों के प्रतिदिन के व्यवहार में रूखापन न आये, इस उद्देश्य से ही श्री साई महाराज समयोचित सात्त्विक विनोद का अवलंबन लेते थे और हास्य उत्पन्न कर भक्तों के अंत:करण सदैव प्रफुल्लित रखने का प्रयत्न करते थे। वयोवृद्ध सज्जन श्री अण्णा चिंचणीकर जो ८५ वर्ष की पकी आयु पार कर चुके थे, बडी दक्षता से शिरडी संस्थान का जमाखर्च का हिसाब देखा करते थे। स्वभाव से वे कुछ गंभीर और स्पष्टवादी थे। किसी के दबाव में आने वालो में वे नही थे। श्री बाबा की उन पर कुछ ममता थी। अपनी सारी संपत्ति श्री बाबा के चरणों में अर्पण कर महान त्याग का एक उत्कृष्ट आदर्श उन्होंने उपस्थित किया था। एक दिन दोपहर के समय जब श्री बाबा विश्राम कर रहे थे तो अण्णासाहेब श्री बाबा के निकट बैठ उनका बायाँ हाथ दबा रहे थे, दाहिनी ओर वेणुबाई नामक एक स्त्री थी श्री बाबा की पीठ दबा रही थी। वेणुबाई, जिन्हे लोग मौसी कहते थे, इतने जोर से पीठ पर मालीश-सी कर रही थी कि मानो श्री बाबा की पीठ और पेट एक ही करना चाहती हो। उसकी पीठ मलने के क्रिया से श्री बाबा का शरीर भी लगातार हिल रहा था। अण्णासाहेब शांतिपूर्वक अपना कर्म कर रहे थे। इस घबराहट में अण्णसाहेब का सिर वेणूबाई के गाल से जा टकराया। मजाक करते हुए वृद्धा ने तडाक से कहा-''यह अण्णा तो बडा ही नटखट है। मेरे गालों का चुंबन करना चाहता है। इतना बूढा होने के बावजूद इसे लज्जा नही आती?'' वेणूबाई के ये शब्द सुनते ही अण्णासाहेब की क्रोधाग्नि भडक उठी। क्रोध से लाल-पीले होकर और अपने कुरते की बाँहे ऊपर उठाते हुए वे गरज कर बोले-''मुझे बुड्ढा कहती हो? अकारण मुझे छेड कर मेरा क्रोध न बढाओ।''

अकस्मात ही कढी में जो यह उफान आया तो वहाँ उपस्थित लोगों मे हँसी का फव्वारा फूट पडा। सभी लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए। दोनों ही भक्तों पर श्री साई महाराज का निर्मल प्रेम था, इसलिए दोनों को सन्तुष्ट करने के उद्देश्य से श्री बाबा ने चतुराई से, पर साथ ही मार्मिक शब्दों से कहा-''अरे अण्णा, ऐसे ही बात का बतंगड क्यो बनाते हो ?

यदि अपनी बूढी माँ का उसके बेटों ने वात्सल्य भाव से चुंबन कर भी लिया तो क्या हुआ और उसमें हानि भी क्या है?'' श्री बाबा के इस प्रासंगिक और समयोजित विनोद से सारी द्वारकामाई आनंदाश्रुओं में डुब गई।

श्री बाबा भक्तों को उनकी इच्छानुसार बर्त्ताव करने की स्वतंत्रता देते थे। भक्तों के मार्ग में किसी के द्वारा रूकावट डालना था उन्हें उनके मार्ग से परांगमुख करना उन्हें पसंद नही था। ऊपर जिन वेणुबाई का उल्लेख हुआ है, वह एक दिन जोर से श्री बाबा का पेट मल रही थी। उनकी वह हास्योत्पादक मुद्रा देखकर एक भक्त को कुछ दु:ख हुआ और उसने वेणुबाई को जरा सावधानी से पेट मलने का परामर्श दिया। श्री बाबा एकाएक क्रोधित हो उठे। उनकी आँखो से आग बरसने लगी। समीप ही रखा हुआ अपना तीन फीट लम्बा लकडी का डंडा उठाकर उन्होंनें अपने पेट में जोर से धुपा लिया और सामने के खम्मे में उसका दुसरा छोर अडा कर वे उस डंडे को पेट में अधिक से अधिक गहराई तक घुसाने का प्रयत्न करने लगे। सब उपस्थित भक्त लोग इस भय से कि श्री बाबा का पेट कही फट ना जाए, किंकर्तव्य-विमूढ होकर खडे रह गए। श्री बाबा क्रुद्ध होकर लगातार खम्मे की ओर बढते ही जा रहे थे। उनका पेट खम्मे से स्पर्श कर गया और सारा डंडा पेट में घुसा हुआ दिखाई देने लगा। कुछ देर बाद श्री बाबा का कोप शान्त हुआ और उन्होंनें वह डंडा झटके के साथ बाहर फेक दिया । इस घटना के पश्चात किसी भी भक्त ने श्री बाबा के मार्ग में बाधा डालने का सभी साहस न किया। उसी क्षण से शिरडी में यह नियम हो गया कि प्रत्येक भक्त अपनी इच्छानुसार श्री बाबा की सेवा करे।

भक्त लोगों की विभिन्न मनोवृत्तियों के कारण शिरडी में एक प्रकार की विचित्र स्वभावों की प्रदर्शनी सी लगी दिखाई देती थी। पर सभी भक्तों के साथ श्री बाबा कितनी निर्लिप्त बुद्धि से व्यवहार करते थे, यह बात सचमुच ध्यान देने योग्य है। शिरडी में रामनवमी का उत्सव बडी धूमधाम से आरम्भ

कराने वाले और जरी के ध्वज के साथ जुलूस निकलवाने वाले व्यापारी, सेठ दामूअण्णा के मन में एक दिन यह संकल्प उठा कि रूई का सट्टा खेलूँ और लाखों की सम्पत्ति का स्वामी बन जाऊँ। मन में यह विचार उत्पन्न होते ही उन्होंने श्री बाबा को पत्र लिखा और उनकी आज्ञा माँगी। श्री बाबा ने निस्पृहता से तथा बिना संकोच के दामूअण्णा को उपदेश दिया कि-''यह जुए का मार्ग पतन का मार्ग है। प्रत्येक मनुष्य को परमेश्वर की दी हुई आधी रोटी में संतुष्ट रहने का प्रयत्न करना चाहिए।'' इस उत्तर से दामूअण्णा को घोर निराशा हुई; क्योंकि उस पूर्ण विश्वास था कि व्यापारिक दृष्टिकोण से उसने जो योजना बनाई थी, उसमे उसे कोई हानि होने कि किंचित भी आशंका नही थी, तरन अगणित लाभ होने का ही उत्तम योग था। व्यापार में अवसर देखकर कार्य करना पडता है। श्री बाबा के उपदेश से दामूअण्णा को संतोष न हुआ और श्री बाबा से प्रत्यक्ष भेट कर उन्हे मनाने के उद्देश्य से वह शिरडी जा पहूँचा। पर वहाँ पहूँचकर श्री बाबा के सम्मुख प्रश्न उपस्थित करने का उसे साहस ही न हुआ। परंतु उसके मन में बारबार यही विचार उठ रहा था ''यदि उस सौदे में कुछ फायदा हुआ तो उस में से कुछ भाग श्री बाबा को भी अर्पण करूँगा'' यह विचार भीसहसा उसके मन में उत्पन्न हुआ। परंतु जो बात मन में थी, उसे श्री बाबा के सामने मुँह पर लाने में बराबर झिझक होती रही। श्री बाबा ने दामूअण्णा के मन में उत्पन्न हुआ विचार स्पष्ट जानते हुए सब लोगों के समक्ष कहा-''बापू, इन सांसारिक, ऐहिक बातों के चक्कर में पडकर स्वयं उलझने की मुझे इच्छा नही है।'' श्री बाबा का यह उत्तर सुनकर दामूअण्णा ने सट्टे का विचार त्याग कर श्री बाबा से प्रश्न किया-''तो क्या मै अनाज का व्यापार कर सकता हूँ?'' इस पर श्री बाबा ने अजीबसा उत्तर देते हुए कहा-''एक रूपये के पाँच सेर के भाव से खरीद कर रूपये के सात सेर के भाव से बेचेगा।'' श्री बाबा द्वारा अनाज के व्यापार में भी हानि होने की सम्भावना प्रकट होने पर दामूअण्णा ने वह विचार भी छोड दिया और चूप साध ली। उसके अन्य

व्यापारी मित्रों ने अनाज एकत्रित किया। उस वर्ष सर्वत्र पर्याप्त वर्षा हुई और अनाज का भाव एकाएक गिर गया। दामूअण्णा के सभी व्यापारी मित्रों को बडा घाटा सहन करना पडा। दामूअण्णा का सोचा हुआ सुरक्षित रूई का सट्टा भी इसी प्रकार लोगों के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ और दामूअण्णा के शेअर बाजार के सहकारी व्यापारी भी बरबाद हो गए। दामूअण्णा को पूर्णतया विश्वास हो गया कि श्री बाबा ने ही उसकी रक्षा की और वह उनका एकनिष्ठ भक्त बन गया।

आगे दामूअण्णा को श्री बाबा की भक्ति करने और उनमें दृढ विश्वास रखने से उत्तम फल प्राप्त हुआ। व्यापार में दामूअण्णा उत्तरोत्तर उन्नति करने लगा। उसे प्रचुर संपत्ति प्राप्त हुई। उसके दो पत्नियाँ थी; पर एक से भी संतान न हुई थी। एक बार गोवा के एक भक्त ने बहुत बढिया किस्म के तीन सौ आम श्री बाबा के पास भेट स्वरूप भेज दिये। ''दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम,'' इस कहावत के अनुसार श्री बाबा ने यह कहते हुए कि ये दामूअण्णा के लिए है, चार आम टोकरी में से उठाये और बाकी आम शामा के सुपुर्द कर उन्हें भक्तों में बाँटने की आज्ञा दे दी। संध्या के समय अचानक दामूअण्णा श्री बाबाके दर्शनो के लिए आया। दामूअण्णा के हाथों में चार फल रखकर आशीर्वाद देते हुए श्री बाबा ने कहा-''ये चार आम अपनी छोटी पत्नी को खिला दो। इन आम्र फलों के सेवन से उसे चार पुत्र और चार कन्याएँ होगी।'' इससे पूर्व ज्योतिषियों ने दामूअण्णा को भली प्रकार बताया था कि उसकी जन्मपत्री में नीच ग्रह होने के कारण वह एक भी पुत्र-संतान का सुख नही पायेगा। दामूअण्णा ने श्री बाबा की आज्ञा का पालन किया और भविष्य में श्री बाबा के वचन ही सच निकलने का उन्हें प्रमाण मिला। ज्योतिषीजी की भविष्यवाणी निरर्थक सिद्ध हुई। श्री साई महाराज के शब्दों में इतना विलक्षण सामर्थ्य होता था। समाधि काल से कुछ दिन पहिले श्री बाबा ने अपने भक्तों को निकट बुलाकर अधिकारयुक्त वाणी से कहा था-''मै यह नश्वर देह छोडकर

जा रहा हूँ। परंतु आप दु:ख न करे। मेरी समाधि में मेरी अस्थियाँ आपको स्फूर्ति तथा पूर्ण आत्मविश्वास प्रदान करेंगी। मेरी शरणमें आये हुए भक्तों के साथ मै समाधिमेंसे भी संभाषण करूँगा और विचार-विनिमय के पश्चात उन्हे जो योग्य है, वही मार्ग बताऊँगा। मै सदा आपके सान्निध्य में हूँ, यह भावना अपनाए हुए कार्य में आपको अपयश का मूँह नही देखना पडेगा।''

श्री साई जैसे सद्गुरू की पूजा किस प्रकार करनी चाहिये, इसका हेमाडपंत ने अपने ग्रंथ में सुंदर विवेचन किया है। हेमाडपन्त कहते है-''श्री बाबा की पाद्य-पूजा करते समय नयनों से प्रेमाश्रुओं के बिंदु गिरने दीजिये। पवित्र प्रेम के चंदन से उनके ललाट पर तिलक लगाइये। पवित्र भक्ति की चादर उन्हे उढाइये। सात्त्विक विचारों के फल-पुष्प उन्हे अर्पण करने का प्रयत्न कीजिये। इससे श्री साई संतुष्ट होंगे और अपने भक्त पर प्रसन्न होंगे। श्री साई की पूजा के लिए नवरत्नों, इत्र-गुलाबदानी अथवा फल-फूलों की, किसी की भी आवश्यकता नही है। श्री साई सच्चे प्रेम और भक्ति के भूखे है। मन में किंचितमात्र भी विकल्प आया तो घबराने का या संशयग्रस्त होने को कारण नही। श्री साई सब कुछ संभाल लेंगे और योग्य मार्ग दिखलायेंगे।''

मित्रों के आग्रहवश पंत नामक एक सज्जन शिरडी गए थे। उन्होनें एक अन्य माने हुए व्यक्ति से गुरू-मंत्र लिया था और उनकी अपने गुरू में पूर्ण श्रद्धा थी। केवल मित्रों के संग ही वह बलात अप्रसन्नता से शिरडी गये थे। लेकिन द्वारकामाई में दर्शन के समय वहाँ का गंभीर दृश्य देखकर पंत के मन पर एकदम गहरा प्रभाव पडा और वे देखतेदखते मूर्च्छित होकर गिर पडे। श्री साई महाराज की ऊदी तथा कमंडलु के जल से वहाँ उपस्थित भक्तों ने पंत की बेहोशी दूर की। श्री बाबा ने पंत के मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा-''अरे पागल, ऐसे घबराते क्यों हो ? कही भी किसी भी दर्शन के लिए जाओ; पर, श्रद्धा केवल अपने गुरू में ही रखो। एकही व्यक्ति के चरणो में मन स्थिर करो और मन में उसी व्यक्ति के प्रति भक्ति भाव रखो। जाओ।''

श्री साई महाराज अन्य सन्तों और माने हुए व्यक्तियों का कितना सम्मान करते थे, यह बात इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है। नित्य का अनुभव तो यही होता है कि हर एक व्यक्ति दूसरों की निंदा कर अपने ही बडप्पन का प्रदर्शन करने में व्यस्त रहता है। परंतु श्री बाबा तो इतनी क्षुद्र मनोवृत्ति के नही थे। उनका मन गौतम बुद्ध के सदृश बहुत ही उँचे स्तर पर स्थिर हुआ था। वे समकालीन महान विभूतियों को हृदय से मान देते थे और उनके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करते थे।

कई वर्षो के पश्चात प्रसिद्ध संत श्री भापकर महाराज का बम्बई में आगमन हुआ था। नानासाहब पिटकर आदि उनके भक्तों ने बडे आग्रहे के साथ उन्हें बम्बई में दो दिन रहने के लिए आतुर हो रहे थे। उनका पूर्व निश्चित दिन पर शिरडी पहूँचना आवश्यक था; क्योंकि दूर परदेश मे रहने वाले अपने पुत्र को उन्होंने पत्र द्वारा संदेश भेजा था कि वह अमुक दिन शिरडी में श्री साई बाबा के पास पहूँच जाये और वे स्वयं भी उसी दिन उपस्थित रहेंगे। परंतु वे बम्बई में अपने भक्तों का आग्रह न टाल सके। उनका वश न चला और वे चुप रहे। पूर्व निश्चय के अनुसार उनका पुत्र शिरडी पहूँचा; पर वहाँ किसी से जान-पहचान न होने के कारण वह अकेला ही एक कोने में चुपचाप बैठ कर अपने पिताजी की प्रतीक्षा करने लगा। आरती आरम्भ होने के पूर्व श्री बाबा का ध्यान भापकर महाराज के पुत्र की ओर आकृष्ट हुआ और अन्तर्ज्ञान से यह जानते हुए कि यह किसका लडका है, उन्होने उस अपने पास बुलाया और भक्तों की ओर अभिमुख होकर कहा-''अरे, इस लडके के पिता की योग्यता तो बहुत बढी चढी है। वे स्वयं यहाँ आने वाले थे; पर वे अपने भक्तों की इच्छा का अनादर न कर सके। अब हमें उनका यथा-योग्य सम्मान करना ही चाहिये। आज के दरबार में इस गद्दी पर इस लडके को बैठाओ और उसका उचित आदर-सत्कार करो।'' श्री बाबा की इच्छानुसार भक्तों ने लडके की

पूजा की तथा आरती उतारी। श्री साई का हृदय कितना विशाल था! भापकर महाराज एक माने हुए संत थे, इसी कारण श्री बाबा ने उनका उचित रूप से सत्कार किया।

आबकारी विभाग में बहुत वर्षो तक सेवा करने के पश्चात सेवानिवृत्त हुए श्री गोपाल नारायण अंबाड्कर का अनुभव भी यहाँ उल्लेखनीय है। ठाणा जिले में तथा जव्हार संस्थान में कार्य करने के पश्चात उनकी आर्थिक स्थिति दिनों-दिन बिगडती गई। यहाँ तक कि अन्त में उन्होंने जीवन से तंग आकर शिरडी में श्री साई महाराज के चरणों में शरण ली। सन १९१६ का समय था। अपने दु:खी जीवन से ऊब कर अंबाडेकर ने विवश होकर आत्महत्या का अन्तिम मार्ग-स्वीकार किया और एक रात्रि को मन में पूर्ण निश्चय कर शिरडी के समीप ही एक कुएँ में डूब कर प्राण देने की पूरी तैयारी से वे निकल पडे। श्री साई देखने में तो उनकी उपेक्षा कर रहे थे; गोपालराव किसी को भी सूचित किये बिना आत्महत्या के लिए कुएँ के निकट पहूँचे। ठीक उसी समय कुएँ के समीप एक भोजनालय का स्वामी, जिसका नाम सगुण मेरू नायक था, अचानक बाहर आया और उसने गोपालराव को देखकर कहा-''अजी, गोपालराव, आप यह अक्कलकोटकर महाराज का जीवन-चरित्र अवश्य पढिये। बहुत ही सुन्दर पुस्तक है।'' गोपालराव ने अपना निश्चय त्याग दिया और सगुण से पुस्तक ले ली। पुस्तक पढते समय उन्होंने सहसा एक अद्‌भुत प्रसंग पढा। इसे केवल संयोग की बात नही कह सकते। श्री साई की अद्‌भुत लीला का ही वह एक प्रकार था। पुस्तक के उस प्रसंग में अक्कलकोटकर महाराज के एक भक्त के जीवन में जो घटना घटी थी, उसी का वर्णन था। वह भक्त जब जीवन से निराश होकर आत्महत्या करने के लिए उद्यत हुआ तो अक्कलकोटकर महाराज ने उसे कुएँ के अनुसार ही तुम्हे इस जन्म में भी भली-बुरी स्थितियों का सामना करना होगा। आत्महत्या जैसा भयानक कर्म करने से तुम्हे निवृत्ति नही मिल सकती। वरन अगले जन्म में तुम्हे इससे भी

अधिक कष्ट उठाना पडेगा। इसीलिए इस जन्म में कर्मानुसार प्राप्त दु:ख को इसी जन्म में भोगने में बुद्धिमत्ता और समझदारी है। कम-से-कम अगले जन्म में तो तुम सुख भोग सकोगे।

अपनी परिस्थिति से मिलते-जुलते प्रसंग का वह वर्णन और अक्कलकोटकर महाराज जैसे माने हूए संत का उपदेश पढकर गोपालराव का उद्विग्न मन भी शांत हुआ और झंझावत मैं डगमगती हूई उनकी जीवन-नैया सुरक्षित किनारे आ लगी। श्री साई महाराज की यह लीला कितनी विलक्षण है! गोपालराव के पिता अक्कलकोटकर महाराज के भक्त थे। श्री साई महाराज ने सगुण के द्वारा उन्हे अपने गुरू का स्मरण भी दिलाया और उसी सद्गुरू की भक्ति करने का उन्हें आदेश दिया।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋